क्या फतवे संविधान से भी ऊपर हैं ?

अक्सर मुस्लिम उलेमा ऐसे फतवे जारी करते रहते हैं, जो जो मुस्लिम समाज को मध्य युग की तरफ खींचने वाले होते हैं| उलेमा हरेक मुद्दे को मजहबी चश्मे से देखते हैं, इन फतवों का मुस्लिम समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है| एक तरफ यह उलेमा मुसलमानों के पिछड़ेपन का रोना रोते रहते हैं और सरकारों को कोसते रहते हैं | लेकिन यह उलेमा इतनी सी बात नहीं स्वीकार करते कि मुसलमानों के पिछड़ेपन के लिए यह खुद जिम्मे दार हैं|

जिस कौम की आधी आबादी को घर में कैद कर दिया जाए वह वह दिनिया के साथ कदम से कदम मिला कर कैसे चल सकती है?

मुसलमानों ने हिन्दुस्तान पर लगभग सात सौ साल हुकूमत की फिर भी वह पिछड़े और गरीब हैं तो क्या इसके लिए हिन्दू जिम्मेदार हैं ? समाज की उन्नति में पुरुष और महिला दोनों का योगदान जरूरी होता है | औरत सिर्फ बच्चे पैदा करने की मशीन नहीं है, उसे भी समाज में कहीं भी जाने, नौकरी करने का संवैधानिक अधिकार है | ऐसा लगता है कि यह उलेमा मध्य युग में जी रहे है, और इन्होंने अपनी समानांतर सरकार बना रखी है | ऐसे फतवे सिर्फ विवाद पैदा करने और दंगा करवाने के उद्देश्य से जारी किये जाते हैं ताकि समाज कई भागों में बटजाए |

इस संदर्भ में एक ताजा उदाहरण दारूल उलूम देवबंद द्वारा जारी फतवे का है। इसमें कहा गया है कि शरियत के मुताबित मुस्लिम महिलाओं को किसी ऐसे संस्थान में काम नहीं करना चाहिए जहां पुरुष और महिलाएं एक साथ काम करते हैं और बिना किसी पर्दे के एक-दूसरे से बात करते हैं। यह फतवा तीन उलेमाओं द्वारा जारी किया गया है। इस फतवे से पता चलता है कि मुस्लिम उलेमा संविधान के मूल्यों को कितना समझते हैं। सबसे पहले तो यह बहस का विषय है कि क्या शरियत पुरुषों और महिलाओं के बीच इस तरह का भेदभाव करती है। बहुत से मुस्लिम उलेमा विचारक और बुद्धिजीवी इस मत से सहमत नहीं हैं।

दूसरे, यदि ऐसा है भी तो देवबंद के उलेमाओं को यह बताने की जरूरत है कि किसी भी पंथ के सिद्धांत को संविधान के सिद्धांतों से ऊपर नहीं माना जा सकता। उदाहरण के तौर पर **अनुच्छेद 14 में कानून** के समक्ष समानता की गारंटी दी गई है और कहा गया है कि **राज्य किसी भी नागरिक के इस अधिकार का हनन नहीं कर सकता।** अनुच्छेद 15 के तहत **राज्य पंथ, प्रजाति, जाति, लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं कर सकता।** अनुच्छेद 16 में उल्लेख है कि **रोजगार के मामले में सभी नागरिकों को अवसर की समानता होगी और किसी भी नागरिक के साथ उसके पंथ, जाति, प्रजाति, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।** इसी प्रकार अनुच्छेद 19 में नागरिकों को कई तरह के अधिकार दिए गए हैं, **जिनमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, संगठन बनाने का**

अधिकार, राज्य के किसी भी हिस्से में बसने और किसी भी तरह के व्यवसाय को करने का अधिकार दिया गया है। ये सभी प्रावधान समानता के सिद्धांत पर किए गए हैं, जो किसी लोकतांत्रिक समाज का आधार है। इन प्रावधानों का मकसद संविधान के आधारभूत सिद्धांतों के उल्लंघन से राज्य के हस्तक्षेप को रोकना और नागरिकों के बीच ऐसे भेदभाव को खत्म करना है।

संविधान के अनुच्छेदों में प्रयुक्त शब्दों से कोई भी समझ सकता है कि हमारे पूर्वज किसी भी तरह के लिंग आधारित भेदभाव को रोकने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे। वे समझते थे कि लैंगिक समानता के बिना किसी भी तरह की समानता संभव नहीं है। इस कारण वे सुनिश्चित करना चाहते थे कि पुरुष और महिला दोनों को ही एकसमान अधिकार मिलें। इसके लिए अनुच्छेद 15 में समानता के संबंध में एक सामान्य अवधारणा की स्थापना की गई है। अनुच्छेद 16 में यह साफ-साफ कहा गया है कि पुरुष और महिला को रोजगार के मामले में एकसमान अधिकार हैं। रोजगार के संबंध में दूसरा महत्वपूर्ण प्रावधान अनुच्छेद 19, जिसमें प्रत्येक नागरिक को अपना व्यवसाय चुनने अथवा करने की स्वतंत्रता दी गई है। हाल में जारी देवबंद फतवा उन सभी प्रावधानों का उल्लंघन करता है जो हमारे संविधान के अध्याय तीन में मौलिक अधिकार के तौर पर लैंगिक समानता को सुनिश्चित करते हैं।

वास्तव में, यह असाधारण है कि आज के समय में जबकि लाखों भारतीय युवा बेहतर शिक्षा हासिल करके विभिन्न क्षेत्रों में योग्यता हासिल करके वैश्विक प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, कुछ पंथिक नेता पीछे ले जाने वाले ऐसे फतवे जारी कर रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति के कारण हमारी अर्थव्यवस्था मजबूत हुई है और महिलाओं को सबल होने के लिए आज से पहले कभी भी ऐसा मौका नहीं मिला। कुछ लोग फतवों में कुछ भी गलत न होने का तर्क देकर इनका बचाव कर रहे हैं कि संविधान में सभी को अपने-अपने पंथ के अनुसार आचरण करने का अधिकार दिया गया है। यह अंशत: ही सही है। अनुच्छेद 25 में प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अपने पंथ के पालन का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 26 में सभी पंथिक संप्रदायों को पंथ के संबंध में स्वतंत्र आचरण का अधिकार दिया गया है।

लेकिन यह अधिकार असीमित नहीं हैं। अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि ये अधिकार लोक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य तथा दूसरे प्रावधानों पर निर्भर हैं। इसका मतलब है कि पंथ संबंधी यह अधिकार संविधान के खंड तीन में दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकते। हमें जरूरत है कि आत्ममुग्ध उलेमाओं को याद दिलाएं कि उनके फतवे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकते।

इन अवधारणाओं की पुष्टि 1952 में द स्टेट आफ बांबे बनाम नरसू अप्पा माली मामले में बांबे हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश चांगला और जस्टिस गजेंद्र गडकर के निर्णय में देखा जा

सकता है, जिसमें कहा गया कि अनु. 25 में दिए गए अधिकार अंतिम अथवा असीमित नहीं हैं। यह लोक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य तथा संविधान के खंड तीन में दिए गए मौलिक अधिकारों के प्रावधानों पर निर्भर करता है। यदि कोई पंथिक व्यवहार लोक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य अथवा सामाजिक कल्याण की नीति को निरुद्ध करता है तो ऐसे पंथिक व्यवहार को सभी लोगों के हितों के संदर्भ में त्याग दिया जाना चाहिए। 1879 में अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने भी कहा था कि संविधान सर्वोपरि है। यदि धार्मिक विश्वासों को सर्वोच्च स्वीकृति मिलती है तो ऐसे में यह संबंधित देश के कानून से ऊपर हो जाएंगे। हालांकि कानून किसी के धार्मिक विश्वासों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते लेकिन वे धार्मिक व्यवहार या आचार में हस्तक्षेप कर सकते हैं। यदि हम पंथिक नेताओं को ऐसे कामों को करने की स्वीकृति देते हैं तो हम अपने संविधान और पंथनिरपेक्ष जीवनशैली को खतरे में डालेंगे। इन सब को देखते हुए देवबंद के उलेमाओं द्वारा जारी फतवा पूरी तरह से असंवैधानिक है क्योंकि यह संविधान के मूल सिद्धांतों लैंगिक समानता, नागरिक अधिकारों, काम करने और किसी व्यवसाय को चुनने की स्वतंत्रता आदि पर चोट पहुंचाता है।

हमें बार-बार मुस्लिम उलेमाओं को बताने की जरूरत है कि भारत एक इस्लामिक राज्य नहीं है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में **अहल-ए-किताब** (लोगों की पुस्तक) के अलग-अलग अर्थ हैं। हमारे संदर्भ में यह किताब हमारा संविधान है और केवल उन्हीं को यह नागरिक मानता है जो इसकी आत्मा, इसमें लिखे शब्दों का आदर करते हैं। क्या मुस्लिम उलेमा इस बात को कभी समझ सकेंगे? हमारे लोकतंत्र के व्यापक हित में कानून मंत्रालय के लिए यह एक अच्छा विचार हो सकता है कि वह पंथिक नेताओं को संवैधानिक कानून का एक बेसिक कोर्स कराए। जरूरत यह है कि ऐसे सभी फतवों पर तुरत कानूनी पाबंदी लगायी जाए, जो संविधान के विपरीत हो |

बी एन शर्मा